

# शासन-चतुस्त्रिशिका और मदनकीर्ति

## १. शासन-चतुस्त्रिशिका

### १. प्रति-परिचय

‘शासन-चतुस्त्रिशिका’ की यही एक प्रति जैन साहित्यमें उपलब्ध जान पड़ती है। यह हमें श्रद्धेय पं० नाथूरामजी प्रेमी बम्बईके अनुग्रहसे प्राप्त हुई।

इसके अलावा प्रयत्न करनेपर भी अन्यत्रसे कोई प्रति प्राप्त नहीं हो सकी। इसकी लम्बाई चौड़ाई १० × ६ इंच है। दायीं और बायीं दोनों ओर एक-एक इंचका हाशिया लूटा हुआ है। इसमें कुल पाँच पत्र हैं और अन्तिम पत्रको छोड़कर प्रत्येक पत्रमें १८.१८ पंक्तियाँ तथा प्रत्येक पंक्तिमें प्रायः ३२, ३२ अक्षर हैं। अन्तिम पत्रमें (९ + ३ =) १२ पंक्तियाँ और हरेक पंक्तिमें उपर्युक्त (३२, ३२) जितने अक्षर हैं। कुछ टिप्पण भी साथमें कहीं-कहीं लगे हुए हैं जो मूलको समझनेमें कुछ मदद पहुँचाते हैं। यह प्रति काफी (सम्भवतः चार-पाँचसौ वर्षकी) प्राचीन प्रतीत होती है और बहुत जीर्ण-शीर्ण दशामें है। लगभग चालीस-पैंतालिस स्थानोंपर तो इसके अक्षर अथवा पद-वाक्यादि, पत्रोंके परस्पर चिपक जाने आदिके कारण प्रायः मिटसे गये हैं और जिनके पढ़नेमें बड़ी कठिनाई महसूस होती है। इस कठिनाईका प्रेमीजीने भी अनुभव किया है और अपने ‘जैन साहित्य और इतिहास’ (पृ० १३९ के फुटनोट) में प्रतिका कुछ परिचय देते हुए लिखा है—“इस प्रतिमें लिखनेका समय नहीं दिया है परन्तु वह दो-तीनसौ वर्षसे कम पुरानी नहीं मालूम होती। जगह-जगह अक्षर उड़ गये हैं जिससे बहुतसे पद्य पूरे नहीं पढ़े जाते।” हमने सन्दर्भ, अर्थ-संगति, अक्षर-विस्तारकयन्त्र आदिसे परिश्रमपूर्वक सब जगहके अक्षरोंको पढ़ कर पद्योंको पूरा करनेका प्रयत्न किया है—सिर्फ एक जगहके अक्षर नहीं पढ़े गये और इसलिये वहाँपर... ऐसे विन्दु बना दिये गये हैं। जान पड़ता है कि अबतक इसके प्रकाशमें न आसकनेका यही कारण रहा है।

यदि यह जीर्ण-शीर्ण प्रति भी न मिली होती तो-जैन साहित्यकी एक-अनमोल कृति और उसके रचयिता एवं अपने समयके विख्यात विद्वान्के सम्बन्धमें कुछ भी लिखनेका अवसर न मिलता। न मालूम ऐसी-ऐसी कितनी साहित्यिक कृतियाँ जैन-साहित्य-भण्डारमें सड़-गल गई होंगी और जिनके नामशेष भी नहीं हैं। आचार्य विद्यानन्दका विद्यानन्दमहोदय, अनन्तवीर्यका प्रमाणसंग्रहभाष्य आदि बहुमूल्य ग्रन्थरत्न हमारे प्रमाद और लापरवाहीसे जैन-वाङ्मय-भण्डारोंमें नहीं पाये जाते। वे या तो नष्ट हो गये या अन्यत्र चले गये। ऐसी हालतमें इस उत्तम और जीर्ण-शीर्ण कृतिको प्रकाशमें लानेकी कितनी जरूरत थी, यह स्वयं प्रकट है।

### ग्रन्थ-परिचय

‘शासनचतुस्त्रिशिका’ एक छोटी-सी किन्तु सुन्दर एवं मौलिक रचना है। इसके रचयिता विक्रमकी १३वीं शताब्दीके सुविख्यात विद्वान् मुनि मदनकीर्ति हैं। इसमें कोई २६ तीर्थस्थानों—८ सिद्धतीर्थक्षेत्रों और १८ अतिशय तीर्थक्षेत्रोंका परम्परा अथवा अनुश्रुतिसे यथाज्ञात इतिहास एक-एक पद्यमें अतिसंक्षेप एवं संकेत

रूपमें निबद्ध है। साथ ही उनके प्रभावोल्लेखपूर्वक दिगम्बरशासनका महत्त्व ब्यापित करते हुए प्रत्येक पद्यमें उसका जयघोष किया गया है।

जैनतीर्थोंके ऐतिहासिक परिचयमें जिन रचनाओं आदिसे विशेष मदद मिल सकती है उनमें यह रचना भी प्राचीनता आदिकी दृष्टिसे अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

विक्रम संवत् १३३४में रचे हुए चन्द्रप्रभसूरिके प्रभावकचरित्र, विक्रम संवत् १३६१ में निर्मित मेरु-तुङ्गाचार्यके प्रबन्धचिन्तामणि, विक्रम संवत् १३८९में पूर्ण हुए जिनप्रभसूरिके त्रिविधतीर्थकल्प और विक्रम संवत् १४०५ में निर्मित राजशेखरसूरिके प्रबन्धकोश (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) में भी जैनतीर्थोंके इतिहासकी सामग्री पायी जाती है। मुनि मदनकीर्तिकी, जिन्हें 'महाप्रामाणिकचूडामणि'का विरुद प्राप्त था और जिसका उल्लेख राजशेखरसूरिने अपने उक्त प्रबन्धकोश (पृष्ठ ६४) में किया है और उनके सम्बन्धका एक स्वतन्त्र 'मदनकीर्तिप्रबन्ध' नामका प्रबन्ध भी लिखा है, यह कृति इन चारों रचनाओंसे प्राचीन (विक्रम संवत् १२८५ के लगभगकी रची) है। अतः यह रचना जैनतीर्थोंके इतिहासके परिचयमें विशेष उल्लेखनीय है।

इसमें कुल ३६ पद्य हैं, जो अनुष्टुप् छन्दमें प्रायः ८४ श्लोक जितने हैं। इनमें नंबरहीन पहला पद्य अगले ३२ पद्योंके प्रथमाक्षरोंसे रचा गया है और जो अनुष्टुप्-वृत्तमें है। अन्तिम (३५वां) पद्य प्रशस्ति-पद्य है, जिसमें रचयिताने अपने नामोल्लेखके साथ अपनी कुछ आत्मचर्या दी है और जो मालिनी छन्दमें है। शेष ३४ पद्य ग्रन्थ-विषयसे सम्बद्ध हैं, जिनकी रचना शार्दूलविक्रीडित वृत्तमें हुई है। इन चौतीस पद्योंमें दिगम्बर शासनके प्रभाव और विजयका प्रतिपादन होनेसे यह रचना 'शासनचतुस्त्रिंशति (शति)का' अथवा शासनचौतीसी' जैसे नामोंसे दि० जैनसाहित्यमें प्रसिद्ध है।

## विषय-परिचय

इसमें विभिन्न तीर्थस्थानों और वहाँके दिगम्बर जिनबिम्बोंके अतिशयों, माहात्म्यों और प्रभावोंके प्रदर्शनद्वारा यह बतलाया गया है कि दिगम्बरशासन अपनी अहिंसा, अपरिग्रह (निर्ग्रन्थता), स्याद्वाद आदि विशेषताओंके कारण सब प्रकारसे जयकारकी क्षमता रखता है और उसके लोकमें बड़े प्रभाव तथा अतिशय रहे हैं। कैलासका ऋषभदेवका जिनबिम्ब, पोदनपुरके बाहुबलि, श्रीपुरके पार्श्वनाथ, हुलगिरि अथवा होलागिरिके शङ्खजिन, धाराके पार्श्वनाथ, बृहत्पुरके बृहद्देव, जैनपुर (जैनबिंदी) के दक्षिण-गोम्मटदेव, पूर्वदिशाके पार्श्वजिनेश्वर, विश्वसेनद्वारा समुद्रसे निकाले शान्तिजिन, उत्तरदिशाके जिनबिम्ब, सम्मेदशिखरके बीस तीर्थङ्कर, पुष्पपुरके श्री पुष्पदन्त, नागद्रहके नागहृद्देश्वरजिन, सम्मेदशिखरकी अमृतवापिका, पश्चिमसमुद्रतटके श्रीचन्द्रप्रभजिन, छायापार्श्वप्रभु, श्रीआदिजिनेश्वर, पावापुरके श्रीवीरजिन, गिरनारके श्रीनेमिनाथ, चम्पापुरके श्रीवासुपूज्य, नर्मदाके जलसे अभिषिक्त श्रीशान्तिजिनेश्वर, आश्रम<sup>१</sup> या आशारम्यके श्रीमुनिमुद्गतजिन, विपुलगिरिका जिनबिम्ब, विन्ध्यागिरिके जिनचैत्यालय, मेदपाट (मेवाड़) देशस्थ नागफणी ग्रामके श्रीमल्लजिनेश्वर और मालवादेशके मङ्गलपुरके श्री अभिनन्दनजिन इन २६के लोक-विश्रुत अतिशयोंका इसमें समुल्लेख हुआ है। इसके अलावा यह भी प्रतिपादन किया गया है कि स्मृतिपाठक, वेदान्ती, वैशेषिक, मायावी, यौग, सांख्य, चार्वाक और बौद्ध इन दूसरे शासनोंद्वारा भी दिगम्बरशासन कई बातोंमें समाश्रित हुआ है।

१. उदयकीर्तिमुनिकृत अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिमें आश्रम और प्राकृत निर्वाणकाण्ड गाथा २० में आशारम्यनगरका उल्लेख है।

इस तरह यह रचना जहाँ दिगम्बरशासनके प्रभावकी प्रकाशिका है वहाँ इतिहास प्रेमियोंके लिए इतिहासानुसन्धानकी इसमें महत्त्वपूर्ण सामग्री भी है। अतः इसकी उपादेयता तथा उपयोगिता स्पष्ट है। इसका एक-एक पद्य एक-एक स्वतन्त्र निबन्धका विषय है।

## २. मुनि मदनकीर्ति

अब विचारणीय है कि इसके रचयिता मुनि मदनकीर्ति कब हुए हैं, उनका निश्चित समय क्या है और वे किस विशेष अथवा सामान्य परिचयको लिखे हुए हैं? अतः इन बातोंपर यहाँ कुछ विचार किया जाता है—

### समय-विचार

(क) जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, कि श्वेताम्बर विद्वान् राजशेखरसूरिने विक्रम सं० १४०५ में प्रबन्धकोष लिखा है जिसका दूसरा नाम चतुर्विंशतिप्रबन्ध भी है। इसमें २४ प्रसिद्ध पुरुषों— १० आचार्यों, ४ संस्कृतभाषाके सुप्रसिद्ध कवि-पण्डितों, ७ प्रसिद्ध राजाओं और ३ राजमान्य सद्गृहस्थोंके प्रबन्ध (चरित) निबद्ध हैं। संस्कृतभाषाके जिन ४ सुप्रसिद्ध कवि-पण्डितोंके प्रबन्ध इसमें निबद्ध हैं उनमें एक प्रबन्ध दिगम्बर विद्वान् विशालकीर्तिके प्रख्यात शिष्य मदनकीर्तिका भी है और जिसका नाम 'मदनकीर्ति-प्रबन्ध' है। इस प्रबन्धमें मदनकीर्तिका परिचय देते हुए राजशेखरसूरिने लिखा है कि "उज्जयिनीमें दिगम्बर विद्वान् विशालकीर्ति रहते थे। उनके मदनकीर्तिनामका एक शिष्य था। वह इतना बड़ा विद्वान् था कि उसने पूर्व, पश्चिम और उत्तरके समस्त वादियोंको जीत कर 'महाप्रामाणिकचूडामणि'के विरुद्धको प्राप्त किया था। कुछ दिनोंके बाद उसके मनमें यह इच्छा पैदा हुई कि दक्षिणके वादियोंको भी जीता जाय और इसके लिए उन्होंने गुरुसे आज्ञा मांगी। परन्तु गुरुने दक्षिणको 'भोगनिधि' देश बतलाकर वहाँ जानेकी आज्ञा नहीं दी। किन्तु मदनकीर्ति गुरुकी आज्ञाको उलंघन करके दक्षिणको चले गये। मार्गमें महाराष्ट्र आदि देशोंके वादियोंको पद-दलित करते हुए कर्णाट देश पहुँचे। कर्णाटदेशमें विजयपुरमें जाकर वहाँके नरेश कुन्तिभोजको अपनी विद्वत्ता और काव्यप्रतिभासे चमत्कृत किया और उनके अनुरोध करनेपर उनके पूर्वजोंके सम्बन्धमें एक ग्रन्थ लिखना स्वीकार किया। मदनकीर्ति एक दिनमें पाँचसौ श्लोक बना लेते थे, परन्तु स्वयं उन्हें लिख नहीं सकते थे। अतएव उन्होंने राजासे सुयोग्य लेखककी माँग की। राजाने अपनी सुयोग्य विदुषी पुत्री मदनमंजरीको उन्हें लेखिका दी। वह पदार्थ भीतरसे लिखती जाती थी और मदनकीर्ति धाराप्रवाहसे बोलते जाते थे। कालान्तरमें इन दोनोंमें अनुराग होगया जब गुरु विशालकीर्तिको यह मालूम हुआ तो उन्होंने समझानेके लिये पत्र लिखे और शिष्योंको भेजा। परन्तु मदनकीर्तिपर उनका कोई असर न हुआ।"

इस प्रबन्धके कुछ आदिभागको यहाँ दिया जाता है—

“उज्जयिन्यां विशालकीर्तिदिगम्बरः। तच्छिष्यो मदनकीर्तिः। स पूर्वपश्चिमोत्तरासु तिसृषु दिक्षु वादिनः सर्वान् विजित्य 'महाप्रामाणिकचूडामणिः' इति विरुद्धमुपाज्य स्वगुर्वलंकृता-मुज्जयिनीमागात्। गुरुनवन्दिष्ट। पूर्वमपि जनपरम्पराश्रुततत्कीर्तिः स मदनकीर्तिः भूयिष्ठमश्ला-धिष्ठ। सोऽपि प्रामोदिष्ट। दिनकतिपयानन्तरं च गुरुं न्यगदीत—भगवन् ! दाक्षिणात्यान् वादिनो विजेतुमोहे। तत्र गच्छामि। अनुज्ञा दीयताम्। गुरुणोक्तम्—वत्स ! दक्षिणां मा गाः। स हि भोग-निधिर्देशः। को नाम तत्र गतो दर्शन्यपि न तपसो भ्रश्येत्। एतद्गुरुवचनं विलङ्घ्य विद्यामदाध्मातो जालकुहालनिःश्रेण्यादिभिः प्रभूतैश्च शिष्यैः परिकरितो महाराष्ट्रादिवादिनो मृद्ग्रन् कर्णाटदेशमाप।

तत्र विजयपुरे कुन्तिभोजं नाम राजानं स्वयं त्रैविद्यविदं विद्वत्प्रियं सदसि निषण्णं स द्वास्थनिवेदितो ददर्श। तमुपश्लोकयामास.....” इत्यादि।

इस प्रबन्धसे दो बातें स्पष्ट हैं। एक तो यह कि मदनकीर्ति निश्चय ही एक ऐतिहासिक सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं और वे दिगम्बर विद्वान् विशालकीर्तिके सुविख्यात एव 'महाप्रामाणिकचूडामणि' की पदवी प्राप्त वादिविजेता शिष्य थे तथा इन प्रबन्धकोशकार राजशेखरसूरि अर्थात् विक्रम सं० १४०५ से पहले हो गये हैं। दूसरी बात यह कि वे विजयपुरनरेश कुन्तिभोजके समकालीन हैं। और उनके द्वारा सम्मानित हुए थे।

अब देखना यह है कि कुन्तिभोजका समय क्या है? जैन-साहित्य और इतिहासके प्रसिद्ध विद्वान् पं० नाथुरामजी प्रेमीका अनुमान है<sup>१</sup> कि प्रबन्धकोषवर्णित विजयपुरनरेश कुन्तिभोज और सोमदेव (शब्दार्णव-चन्द्रिकाकार) वर्णित वीरभोजदेव एक ही हैं। सोमदेवमुनिने अपनी शब्दार्णवचन्द्रिका कोल्हापुर प्रान्तके अर्जुरिका ग्राममें वादीभवञ्जाश विशालकीर्ति पण्डितदेवके वैयावृत्यसे वि० सं० १२६२ में बनाकर समाप्त की थी<sup>२</sup> और उस समय वहाँ वीर-भोजदेवका राज्य था। सम्भव है विशालकीर्ति अपने शिष्य मदनकीर्तिको समझानेके लिये उधर कोल्हापुरकी तरफ गये हों और तभी उन्होंने सोमदेवकी वैयावृत्य की हो। प्रेमीजीकी मान्यतानुसार कुन्तिभोजका समय विक्रम सं० १२६२के लगभग जान पड़ता है और इस लिये विशालकीर्तिके शिष्य मदनकीर्तिका समय भी यही विक्रम सं० १२६२ होना चाहिये।

(ख) पण्डित आशाधरजीने अपने जिनयज्ञकल्पमें<sup>३</sup>, जिसे प्रतिष्ठासारोद्धार भी कहते हैं और जो विक्रम संवत् १२८५ में बनकर समाप्त हुआ है, अपनी एक प्रशस्ति<sup>४</sup> दी है। इस प्रशस्ति में अपना विशिष्ट परिचय देते हुए एक पद्यमें उन्होंने उल्लेखित किया है कि वे मदनकीर्तियतिपतिके द्वारा 'प्रज्ञापुञ्ज' के नामसे अभिहित हुए थे अर्थात् मदनकीर्तियतिपतिने उन्हें 'प्रज्ञापुञ्ज' कहा था। मदनकीर्तियतिपतिके उल्लेखवाला उनका वह प्रशस्तिगत पद्य निम्न प्रकार है :—

इत्थुदयसेनमुनिना कविसुहृदा योऽभिनन्दितः प्रीत्या ।

प्रज्ञापुञ्जोऽसीति च योऽभिहि (म) तो मदनकीर्तियतिपतिना ॥

इस उल्लेखपरसे यह मालूम हो जाता है कि मदनकीर्तियतिपति, पण्डित आशाधरजीके समकालीन अथवा कुछ पूर्ववर्ती विद्वान् थे और विक्रम संवत् १२८५के पहले वे सुविख्यात हो चुके थे तथा साधारण विद्वानों एवं मुनियोंमें विशिष्ट व्यक्तित्वको भी प्राप्त कर चुके थे और इसलिये यतिपति-मुनियोंके आचार्य माने जाते थे। अतः इस उल्लेखसे मदनकीर्ति विक्रम संवत् १२८५ के निकटवर्ती विद्वान् सिद्ध होते हैं।

(ग) मदनकीर्तिने शासनचतुस्त्रिशिकामे एक जगह (३४वें पद्यमें) यह उल्लेख किया है कि आततायी म्लेच्छोंने भारतभूमिको रौंधते हुए मालवदेशके मङ्गलपुर नगरमें जाकर वहाँके श्रीअभिनन्दन-जिनेन्द्रकी मूर्तिको भग्न कर दिया और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये, परन्तु वह जुड़ गयी और सम्पूर्णवयव बन गई और उसका एक बड़ा अतिशय प्रकटित हुआ। जिनप्रभसूरिने अपने विविधतीर्थकल्प अथवा कल्पप्रदीपमें, जिसकी

१. जैनसाहित्य और इतिहास पृ० १३९ ।

२. उक्त ग्रन्थके पृ० १३८के फुटनोटमें उद्धृत शब्दार्णवचन्द्रिकाकी अन्तिम प्रशस्ति ।

३. विक्रमवर्षसपचाशीतिद्वादशशतेष्वतीतेषु ।

आश्विनसितान्त्यदिवसे साहसमल्लापराक्षस्य ॥१९॥

४. यही प्रशस्ति कुछ हेर-फेरके साथ उनके सागारधर्ममृत आदि दूसरे कुछ ग्रन्थोंमें भी पाई जाती है ।

रचना उन्होंने विक्रम सं० १३६४ से लगाकर विक्रम सं० १३८९ तक २५ वर्षोंमें की है, एक 'अवन्ति-देशस्थ-अभिनन्दनदेवकल्प' नामका कल्प निबद्ध किया है। इसमें उन्होंने भी म्लेच्छसेनाके द्वारा अभिनन्दन-जिनकी मूर्तिके भग्न होनेका उल्लेख किया है और उसके जुड़ने तथा अतिशय प्रकट होनेका वृत्त दिया है और बतलाया है कि यह घटना मालवाधिपति जयसिंहदेव के राज्यकालसे कुछ वर्ष पूर्व ही ली थी और जब उसे अभिनन्दनजिनका आश्चर्यकारी अतिशय सुननेमें आया तो वह उनकी पूजाके लिये गया और पूजा करके अभिनन्दनजिनकी देखभाल करने वाले अभयकीर्ति आदि मठपति आचार्यों (भट्टारकों) के लिये देवपूजार्थ २४ हलकी खेती योग्य जमीन दी तथा १२ हलकी जमीन देवपूजकोंके वास्ते प्रदान की। यथा—

“तमतिशयमतिशायिनं निशम्य श्रीजयसिंहदेवो मालवेश्वरः स्फुरद्भक्तप्राम्भारभास्व-  
रान्तःकरणः स्वामिनं स्वयमपूजयत् । देवपूजार्थं च चतुर्विंशतिहलकृष्णैः भूमिमदत्त मठ-  
पतिभ्यः । द्वादशहलबाह्यां चावनीं देवार्चकेभ्यः प्रददाववन्तिपतिः । अद्यापि दिग्मण्डलव्यापिप्रभा-  
ववैभवो भगवानभिनन्दनदेवस्तत्र तथैव पूज्यमानोऽस्ति ।”  
—विविधतीर्थ० पृ० ५८ ।

जिनप्रभसूरिद्वारा उल्लिखित यह मालवाधिपति जयसिंहदेव द्वितीय जयसिंहदेव जान पड़ता है, जिसे जैतुगिदेव भी कहते हैं और जिसका राज्यसमय विक्रम सं० १२९० के बाद और विक्रम सं० १३१४ तक बतलाया जाता है<sup>२</sup>। पण्डित आशाधरजीने त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र, सागारधर्ममृतटीका और अनगारधर्ममृतटीका ये तीन ग्रन्थ क्रमशः वि० सं० १२९२, १२९६ और १३०० में इसी (जयसिंहदेव द्वितीय अथवा जैतुगिदेव)के राज्यकालमें बनाये हैं<sup>३</sup>। जिनयज्ञकल्पकी प्रशस्ति (पद्य ५) में पण्डित आशाधरजीने यहाँ ध्यान देने योग्य एक बात यह लिखी है<sup>४</sup> कि 'म्लेच्छपति साहिवुदीनने जब सपादलक्ष (सवालाख) देश (नागौर-जोधपुरके आस-पासके प्रदेश) को ससैन्य आक्रान्त किया तो वे अपने सदाचारकी हानिके भयसे वहाँसे चले आये और मालवाकी धारा नगरीमें आ बसे। इस समय वहाँ विन्ध्यनरेश (विक्रम सं० १२१७ से विक्रम सं० १२४९) का राज्य था।' यहाँ पण्डित आशाधरजीने जिस मुस्लिम बादशाह साहिवुदीनका उल्लेख किया है वह शहा-बुद्दीनगोरी है। इसने विक्रम सं० १२४९ (ई० सन् ११९२) में गजनीसे आकर भारतपर हमला करके दिल्लीको हस्तगत किया था और उसका १४ वर्ष तक राज्य रहा। और इसलिये असम्भव नहीं इसी आत-तायी बादशाह अथवा उसके सरदारोंने ससैन्य उक्त १४ वर्षोंमें किसी समय मालवाके उल्लिखित धन-धान्या-दिसे भरपूर मङ्गलपुर नगरपर धावा मारा हो और हीरा-जवाहरातादिके मिलनेके दुर्लभ अथवा धार्मिक विद्वेषसे वहाँ के लोकविश्रुत श्रीअभिनन्दनजिनके चैत्यालय और बिम्बको तोड़ा हो और उसीका उल्लेख मदनकीर्तिने "म्लेच्छैः प्रतापागतैः" शब्दों द्वारा किया हो। यदि यह ठीक हो तो यह कहा जा सकता है कि

१. मुनिजिनविजयजी द्वारा सम्पादित विविधतीर्थकल्पकी प्रस्तावना पृ० २ ।
२. जैनसाहित्य और इतिहास, पृ० १३४ ।
३. इन ग्रन्थोंकी अन्तिम प्रशस्तियाँ ।
४. म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति-  
त्रासाद्विन्ध्यनरेन्द्रदोःपरिमलस्फूर्जस्त्रिवर्गीजसि ।  
प्राप्तो मालवमण्डले बहुपरोवारः पुरीमावसन्  
यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः ॥५॥  
'म्लेच्छेशेन साहिवुदीन तुर्ष्कराजेन' —सागारधर्म० टीका पृ० २४३ ।

मदनकीर्तिने इस शासनचतुस्त्रिंशिकाको विक्रम सं० १२४९ और वि० सं० १२६३ या वि० सं० १३१४ के भीतर किसी समय रचा है और इसलिए उनका समय इन संवत्तोंका मध्यकाल होना चाहिये ।

इस ऊहापोहसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि मदनकीर्तिका वि० सं० १२८५ के पं० आशाधरजी-कृत जिनयज्ञकल्पमें उल्लेख होनेसे वे उनके कुछ पूर्ववर्ती विद्वान् निश्चितरूपमें हैं, और इसलिये उनका वि० सं० १२८५ के आसपासका समय सुनिश्चित है ।

### स्थानादि-विचार

समयका विचार करनेके बाद अब मदनकीर्तिके स्थान, गुरुपरम्परा, योग्यता और प्रभावादिपर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए । मदनकीर्ति वादीन्द्र विशालकीर्तिके शिष्य थे और वादीन्द्र विशालकीर्तिने पं० आशाधरजीसे न्यायशास्त्रका अभ्यास किया था । पं० आशाधरजीने धारामें रहते हुए ही उन्हें न्याय-शास्त्र पढ़ाया था और इसलिये उक्त दोनों विद्वान् (विशालकीर्ति तथा मदनकीर्ति) भी धारामें ही रहते थे । राजशेखरसूरिने भी उन्हें उज्जयिनीके रहनेवाले बतलाया है । अतः मदनकीर्तिका मुख्यतः स्थान उज्जयिनी (धारा) है । ये वाद-विद्यामें बड़े निपुण थे । चतुर्दिशाओंके वादियोंको जीतकर उन्होंने 'महाप्रामाणिक-चूड़ा-मणि' की महनीय पदवी प्राप्त की थी । ये उच्च तथा आशु कवि भी थे । कविता करनेका इन्हें इतना उत्तम अभ्यास था कि एक दिनमें ५०० श्लोक रच डालते थे । विजयपुरके नरेश कुन्तिभोजको इन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभासे आश्चर्यान्वित किया था और इससे वह बड़ा प्रभावित हुआ था । पण्डित आशाधरजीने इन्हें 'यतिर्पात' जैसे विशेषणके साथ उल्लेखित किया है । इन सब बातोंसे इनकी योग्यता और प्रभावका अच्छा आभास मिलता है ।

संभव है राजाकी विदुषी पुत्री और इनका आपसमें अनुराग हो गया हो और ये अपने पदसे च्युत हो गये हों; पर वे पीछे सम्हल गये थे और अपने कृत्यपर घृणा भी करने लगे थे । इस बातका कुछ स्पष्ट आभास उनकी इसी शासनचतुस्त्रिंशिकाके "यत्पापवासाद्वालोक्य" इत्यादि प्रथम पद्य और "इति हि मदन-कीर्तिश्चिन्तयन्नाऽऽत्मचित्ते" इत्यादि ३५वें पद्यसे होता है और जिसपरसे मालूम होता है कि वे कठोर तपका आचरण करते तथा अकेले विहार करते हुए इन्द्रियों और कषायोंकी उद्दाम प्रवृत्तियोंको कठोरतासे रोकनेमें उद्यत रहते थे और जीवमात्रके प्रति बन्धुत्वकी भावना रखते थे । तात्पर्य यह कि मदनकीर्ति अपने अन्तिम जीवनमें प्रायश्चित्तादि लेकर यथावत् मुनिपदमें स्थित हो गये थे और दैगम्बरी वृत्ति तथा भावनासे अपना समय यापन करते थे, ऐसा उक्त पद्योंसे मालूम होता है । उनका स्वर्गवास कब, कहाँ और किस अवस्थामें हुआ, इसको जाननेके लिये कोई साधन प्राप्त नहीं है । पर इतना जरूर कहा जा सकता है कि वे मुनि-अवस्थामें ही स्वर्गवासी हुए होंगे, गृहस्थ अवस्थामें नहीं; क्योंकि अपने कृत्यपर पश्चात्ताप करनेके बाद पूर्व-वत् मुनि होगये थे और उसी समय यह शासनचतुस्त्रिंशिका रची, ऐसा उसके अन्तःपरोक्षणपरसे प्रकट होता है ।

राजशेखरसूरिने कुछ घटा-बढ़ाकर उनका चरित्र चित्रण किया जान पड़ता है । प्रेमीजीने<sup>१</sup> भी उनके इस चित्रणपर अविश्वास प्रकट किया है और मदनकीर्तिसे सौ वर्ष बाद लिखा होनेसे 'घटनाको गहरा रंग देने' या 'तोड़े मरोड़े जाने' तथा 'कुछ तथ्य' होनेका सूचन किया है । जो हो, फिर भी उसके ऐतिहासिक तथ्यका मूल्यांकन होना चाहिए ।

१. जैनसाहित्य और इतिहास प० १३९ ।

इस रचनाके अलावा मदनकीर्तिकी और भी रचनाएँ हैं या नहीं, यह अज्ञात है। वर विजयपुर नरेश कुन्तिभोजके पूर्वजोंके सम्बन्धमें लिखा गया उनका परिचयग्रन्थ रहा है, जिसका उल्लेख राजशेखरने मदनकीर्ति-प्रबन्धमें किया है।

## शासनचतुस्त्रिशिकामें उल्लिखित तीर्थ और उनका कुछ परिचय

इस शासनचतुस्त्रिशिकामें जिन तीर्थों एवं सातिशय दिगम्बर जिनबिम्बोंका उल्लेख हुआ है वे २६ हैं। उनमें ८ तो सिद्ध-तीर्थ हैं और १८ अतिशयतीर्थ हैं। उनका यहाँ कुछ परिचय दिया जाता है।

### सिद्ध-तीर्थ

जहाँसे कोई पवित्र आत्मा मुक्ति अथवा मोक्ष प्राप्त करता है उसे जैनधर्ममें सिद्धतीर्थ कहा गया है। इसमें यतिपति मदनकीर्तिने ऐसे ८ सिद्धतीर्थोंका सूचन किया है। वे ये हैं :—

१ कैलासगिरि, २ पोदनपुर, ३ सम्मेदशिखर (पार्श्वनाथहिल), ४ पावापुर, ५ गिरनार (ऊर्जयन्त-गिरि), ६ चम्पापुरी, ७ विपुलगिरि और ८ विन्ध्यागिरि।

### १. कैलासगिरि

भारतीय धर्मोंमें विशेषतः जैनधर्ममें कैलासगिरिका बहुत बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। युगके आदिमें प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ)ने यहाँसे मुक्ति-लाभ प्राप्त किया था। उनके बादमें नागकुमार, बालि और महाबालि आदि मुनिवरोंने भी यहाँसे सिद्ध पद पाया था। जैसाकि विक्रमकी छठी शताब्दीके सुप्रसिद्ध विद्वानाचार्य पूज्यपाद (देवनन्दि) की संस्कृत निर्वाणभक्तिसे और अज्ञातकर्तृक प्राकृत निर्वाणकाण्डसे प्रकट है:—

(क) कैलासशैलशिखरे परिनिर्वृतोऽसौ

शैलेसिभावमुपपद्य वृषो महात्मा ।—नि० भ०, श्लो० २२।

(ख) अट्टावयम्मि उसहो ।—नि० का० गा० नं० १।

णागकुमारमुण्डो बालि महाबालि चैव अज्जेया ।

अट्टावय-गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसि ॥—नि० का०, १५।

मुनि उदयकीर्तिने भी अपनी 'अपभ्रंश निर्वाणभक्ति' में कैलासगिरिका और वहाँसे भगवान् ऋषभदेवके निर्वाणका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

(ग) कइलास-सिहरि सिहरि-रिसहनाहु,

जो सिद्धउ पयडमि धम्मलाहु।

यह ध्यान रहे कि अष्टापद इसी कैलासगिरिका दूसरा नाम है। जैनेतर इसे 'गौरीशङ्कर पहाड़' भी कहते हैं। भगवज्जिनसेनाचार्यके आदिपुराण तथा दूसरे दिगम्बर ग्रन्थोंमें इसकी बड़ी महिमा गाई गई है। श्वेताम्बर और जैनेतर सभी इसे अपना तीर्थ मानते हैं। इससे इसकी व्यापकता और महानता स्पष्ट है। किसी समय यहाँ भगवान् ऋषभदेवकी बड़ी ही मनोज्ञ और आकर्षक सातिशय सुवर्णमय दिगम्बर जिनमूर्ति

१. इसके रचयिता कौन हैं और यह कितनी प्राचीन रचना है? यह अभी अनिश्चित है फिर भी वह सात आठ-सौ वर्षसे कम प्राचीन नहीं मालूम होती।

प्रतिष्ठित थी, जिसका उल्लेख मदनकीर्तिने इस रचनाके प्रथम पद्यमें सबसे पहले और बड़े गौरवके साथ किया है और 'अद्य' शब्दका प्रयोग करके अपने समयमें उसका होना तथा देवोंद्वारा भी उसकी वन्दना किया जाना खासतौरसे सूचित किया है। मालूम नहीं, अब यह मूर्ति अथवा उसके चिह्नादि वहाँ मौजूद हैं या नहीं ? पुरातत्वप्रेमियोंको इसकी खोज करनी चाहिए।

## २. पोदनपुर

पोदनपुरकी स्थितिके सम्बन्धमें अनेक विद्वानोंने विचार किया है। डाक्टर जैकोबी विमलसूरिकृत 'पउमचरिय'के आधारसे पश्चिमोत्तरसीमाप्रान्तमें स्थित 'तक्षशिला'को पोदनपुर बतलाते हैं और डाक्टर गोविन्द पै हैदराबाद-बरारमें निजामाबाद जिलेके 'बोधन' नामक एक ग्रामको पोदनपुर कहते हैं। बा० कामताप्रसादजी जैनने इन दोनों मतोंकी समीक्षा करते हुए जैन और जैनेतर साहित्यकी साक्षी द्वारा प्रमाणित किया है<sup>१</sup> कि तक्षशिला पोदनपुरसे भिन्न पश्चिमोत्तरसीमाप्रान्तमें अवस्थित थी और पोदनपुर दक्षिणभारतमें गोदावरीके तटपर कहीं बसा हुआ था। भगवज्जिनसेनके परमशिष्य और विक्रमकी ९वीं शताब्दीके विद्वानाचार्य गुणभद्रने अपने उत्तरपुराणमें स्पष्ट लिखा है<sup>२</sup> कि 'भारतके दक्षिणमें सुरम्य (अश्मक) नामका एक बड़ा (महान्) देश है उसमें पोदनपुर नामक विशाल नगर है जो उस देशकी राजधानी है'। श्रीकामताप्रसादजीने यह भी बतलाया है कि जैन पुराणोंमें पोदनपुरको पोदन, पोदनापुर, पौदन और पौदन्य तथा बौद्धग्रन्थोंमें दक्षिणापथके अश्मक देशकी राजधानी पोतन या पोतलि एवं हिन्दूग्रन्थ भागवत-पुराणमें इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंकी अश्मक देशकी राजधानी पौदन्य कहा गया है और वह प्राचीन समयमें एक विख्यात नगर रहा है।

जैन इतिहासमें पोदनपुरका उल्लेखनीय स्थान है। आदिपुराण आदि जैनग्रन्थों और अनेक शिलालेखोंमें<sup>३</sup> वर्णित है कि आदितीर्थङ्कर ऋषभदेवके दो पुत्र थे—भरत और बाहुबलि। ऋषभदेव जब संसारसे विरक्त हो दीक्षित हुए तो उन्होंने भरतको अयोध्याका और बाहुबलिको पोदनपुरका राज्य दिया और इस तरह भरत अयोध्याके और बाहुबलि पोदनपुरके राजा हुए। कालान्तरमें इन दोनों भाइयोंका युद्ध हुआ। युद्धमें बाहुबलिकी विजय हुई। परन्तु बाहुबलि संसारकी दशाँ देखकर राज्यको त्याग तपस्वी हो गये और कठोर तपकर पोदनपुरमें उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त करके निर्वाण-लाभ किया। बादकी सम्राट् भरतने अपने विजयी, अद्भुत त्यागी तथा अद्वितीय तपस्वी और इस युगमें सर्वप्रथम परमात्मपद एवं परिनिर्वृत्ति प्राप्त करनेवाले अपने इन आदर्श भाईकी यादगारमें पोदनपुरमें ५२५ धनुषप्रमाण उनकी शरीराकृतिके अनुरूप अनुपम मूर्ति स्थापित कराई, जो बड़ी ही मनोज्ञ और लोकविश्रुत हुई। तबसे पोदनपुर सिद्धतीर्थ और अति-शयतीर्थके रूपमें जैनसाहित्यमें विश्रुत है। आचार्य पूज्यपादने अपनी निर्वाणभक्तिमें उसका सिद्धतीर्थके रूपमें समुल्लेख किया है। यथा—

१. 'पोदनपुर और तक्षशिला' शीर्षक लेख, 'जैन एन्टीक्वेरी' भा० ४ कि० ३।

२. जम्बूविभूषणे द्वीपे भरते दक्षिणे महान् ।

सुरम्यो विषयस्तत्र विस्तीर्ण पोदनं पुरम् ॥

३. शिलालेख नं० ८५ आदि, जो विन्ध्यगिरिपर उत्कीर्ण हैं।—(शि० सं० पृ० १६९)।

४. वह यह कि राज्य जैसे जघन्य स्वार्थके लिए भाई-भाई भी लड़ते हैं और एक दूसरेकी जानके दुश्मन बन जाते हैं।



(क) विन्ध्ये च पौदनपुरे वृषदीपके च ॥२९॥

X X X

ये साधवो हृतमलाः सुगतिं प्रयाताः ।

स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ॥३०॥

‘निर्वाणकाण्ड’ और मुनि उदयकीर्तिकृत ‘अपभ्रंशनिर्वाणभक्ति’में भी पौदनपुरके बाहुबली स्वामीकी अतिशय श्रद्धाके साथ वन्दना की गई है । यथा—

(ख) बाहुबलि तह वंदमि पौदनपुर हत्थिनापुरे वंदे ।

संतो कुंथु व अरिहो वाराणसीए सुपास पासं च ॥—गा० नं० २१ ।

(ग) बाहुबलिदेउ पोयणपुरंमि, हंडं वंदमि माहसु जम्मि जम्मि ।

ऐसा जान पड़ता है कि कितने ही समयके बाद बाहुबलिस्वामीकी उक्त मूर्तिके जीर्ण होजानेपर उसका उद्धारकार्य और उस जैसी उनकी नयी मूर्तियाँ वहाँ और भी प्रतिष्ठित होती रही हैं । मदनकीर्तिके समयमें भी पौदनपुरमें उनकी अतिशयपूर्ण विशाल मूर्ति विद्यमान थी, जिसकी सूचना उन्होंने पद्य दोमें ‘अद्यापि प्रतिभाति पौदनपुरे यो वन्द्यवन्द्यः स वै’ शब्दोंद्वारा की है और जिसका यह अतिशय था कि भव्योंको उनके चरणखोंकी कान्तिमें अपने कितने ही आगे-पीछेके भव प्रतिभासित होते थे । मदनकीर्तिके प्रायः समकालीन अथवा कुछ पूर्ववर्ती कन्नडकवि पं० वोप्पणद्वारा लिखित एक शिलालेख नं० ८५ (२३४)में, जो ३२ पद्यात्मक कन्नड रचना है और जो विक्रम संवत् १२३७ (शक सं० ११०२)के लगभगका उत्कीर्ण है, चामुण्डरायद्वारा निर्मित दक्षिण गोमटेश्वरकी मूर्तिके निर्माणका इतिहास देते हुए बतलाया है कि चामुण्डरायको उक्त पौदनपुरके बाहुबलीकी मूर्तिके दर्शन करनेकी अभिलाषा हुई थी और उनके गुरुने उसे कुक्कुड सर्पोंसे व्याप्त और बीहड़ वनसे आच्छादित होजानेसे उसका दर्शन होना अशक्य तथा अगम्य बतलाया था और तब उन्होंने जैनबिद्री (श्रवणबेलगोल)में उसी तरहकी उनकी मूर्ति बनवाकर अपनी दर्शनाभिलाषा पूर्ण की थी । अतः मदनकीर्तिकी उक्त सूचना विचारणीय है और विद्वानोंको इस विषयमें खोज करनी चाहिये ।

उपर्युक्त उल्लेखोंपरसे प्रकट है कि प्राचीन कालमें पौदनपुरके बाहुबलीका बड़ा माहात्म्य रहा है और इसलिये वह तीर्थक्षेत्रके रूपमें जैनसाहित्यमें खासकर दिगम्बर साहित्यमें उल्लिखित एवं मान्य है ।

### ३. सम्मेदशिखर

सम्मेदशिखर जैनोंका सबसे बड़ा तीर्थ है और इसलिये उसे ‘तीर्थराज’ कहा जाता है । यहाँसे चार तीर्थङ्करों (ऋषभदेव, वासुपूज्य, अरिष्टनेमि और महावीर)को छोड़कर शेष २० तीर्थङ्करों और अगणित मुनियोंने सिद्ध-पद प्राप्त किया है । इसे जैनोंके दोनों सम्प्रदाय (दिगम्बर और श्वेताम्बर) समानरूपसे अपना पूज्य तीर्थ मानते हैं । पूज्यपाद देवन्दिने अपनी ‘संस्कृतनिर्वाणभक्ति’में लिखा है कि बीस तीर्थङ्करोंने यहाँसे परिनिर्वाणपद पाया है । यथा—

(क) शेषास्तु ते जिनवरा जित-मोहमल्ला ज्ञानार्क-भूरिकिरणैरवभास्य लोकान् ।

स्थानं परं निरवधारितसौख्यनिष्ठं सम्मेदपर्वतले समवापुरीशाः ॥२५॥

इसी तरह ‘प्राकृतनिर्वाणकाण्ड’ और मुनि उदयकीर्तिकृत ‘अपभ्रंशनिर्वाणभक्ति’में भी सम्मेदपर्वतसे बीस जिनेन्द्रोंने निर्वाण प्राप्त करनेका उल्लेख है और जो निम्न प्रकार है—

(ख) वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुर-वंदिदा धुद-किलेसा ।

सम्मदे गिरिसिहरे निव्वाणगया णमो तसिं ॥२॥—नि० का० ।

(ग) सम्मदे-महागिरि सिद्ध जे वि, हुंउं वंदउं वीस-जिणिंद ते वि ।—अ० नि० भ० ।

इस तरह इस तीर्थका जैनधर्ममे बड़ा गौरवपूर्ण स्थान है। प्रतिवर्ष सहस्रों जैनी भाई इस सिद्ध-तीर्थकी वन्दनाके लिये जाते हैं। यह विहारप्रान्तके हजारीबाग जिलेमें ईसरी स्टेशनके, जिसका अब पारसनाथ नाम हो गया है, निकट है। इसे 'पारसनाथ हिल' (पार्श्वनाथका पहाड़) भी कहते हैं, जिसका कारण यह है कि पर्वतपर २३वें तीर्थकर भगवान् पार्श्वनाथका सबसे बड़ा और प्रमुख जिनमन्दिर बना हुआ है। और इसके कारण ही उक्त स्टेशनका नाम भी 'पारसनाथ' हो गया है। मदनकीर्तिने इस सिद्धक्षेत्रका उल्लेख पद्य ११ में किया है।

#### ४. पावापुर

यहाँसे अन्तिम तीर्थकर वर्द्धमान-महावीरने निर्वाण प्राप्त किया है। अतएव पावापुर जैनसाहित्यमें सिद्धक्षेत्र माना जाता है। आचार्य पूज्यपादने लिखा है—

पावापुरस्य बहिरुत्तभूमिदेशे पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये ।

श्रीवर्द्धमानजिनदेव इति प्रतीतो निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ॥

—निर्वा० भ० २४ ।

निर्वाणकाण्ड और अपभ्रंश-निर्वाणभक्तिमें भी यही बतलाया है। यथा—

(क) पावाए णिव्बुदो महावीरो—नि० का० गा० १ ।

(ख) पावापुर वंदउं वड्ढमाणु, जिणि महियलि पयडिउ विमलमाणु ।—अ० नि० भ० ।

यह पावापुर परम्परासे विहारप्रान्तमें माना जाता है जो पटनाके निकट है। गुणावासे १३ मीलकी दूरीपर है और वहाँ मोटर, ताँगे आदिसे जाते हैं। यहाँ कातिक वदी अमावस्याको भगवान् महावीरके निर्वाण-दिवसोपलक्ष्यमें एक बड़ा मेला भरता है। यहाँ वीरजिनेन्द्रकी सातिशय मूर्ति रही है, जिसका मदनकीर्तिने पद्य १९में उल्लेख किया है। अब तो वहाँ चरणपादुका शेष रही है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि पुरातत्त्वविद् और ऐतिहासिक विद्वानोंने उत्तर प्रदेशमें कुशीनगरके पास पावानगर (फाजिल नगर)को भगवान् महावीरकी निर्वाणभूमि माना एवं सिद्ध किया है<sup>१</sup>। निर्वाण-दिवसपर यहाँ जनसमुदाय एकत्रित होता और निर्वाण दिवस मनाता है।

#### ५. गिरनार (ऊर्जयन्तगिरि)

यहाँसे २२वें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमिने निर्वाण प्राप्त किया है और असंख्य ऋषि-मुनियोंने भी यहाँ तप करके सिद्धपद पाया है। अतएव यह सिद्धतीर्थ है। आचार्य पूज्यपादने कहा है कि जिन 'अरिष्टनेमिकी इन्द्रादि और जैनेतर साधुजन भी अपने कल्याणके लिये उपासना करते हैं उन अरिष्टनेमिने अष्टकर्मोंको नाशकर महान् ऊर्जयन्तगिरि—गिरनारसे मुक्तिपद प्राप्त किया।' यथा—

यत्प्रार्थयंते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः पाखण्डिभिश्च परमार्थ-गवेष-शीलैः ।

नष्टाऽष्ट-कर्म-समये तदरिष्टनेमिः सम्प्राप्तवान् क्षितिधरे बृहद्ऊर्जयन्ते ॥२३॥

१. 'पावा समीक्षा', 'प्राचीन पावा', 'पावाकी झाँकी' आदि पुस्तकें।

निर्वाणकाण्डकार और अपभ्रंश निर्वाणभक्तिकारका भी यही कहना है—

(क) उज्जंते णेमिजिणो'—प्रा० नि० का० गा० १ ।

(ख) 'उज्जंतिमहागिरि सिद्धिपत्तु, सिरिनेमिनाहु जादवपवित्तु ।

इसके सिवाय इन दोनों ग्रन्थकारोंने यह भी लिखा है कि प्रद्युम्नकुमार, शम्भुकुमार, अनिरुद्धकुमार और सात सौ बहत्तर कोटि मुनियोंने भी इसी ऊर्जयन्तगिरि—गिरनारसे सिद्ध-पद प्राप्त किया है । यथा—

(क) णमसामि पज्जुण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो ।

बाहत्तरकोडीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥—नि० का० ५ ।

(ख) अण्णे पुणु सामपजुण्णवेवि, अणिरुद्धसहिय हुउं नवमि ते वि ।

अवरे पुणु सत्तसयाइं तित्थु, बाहत्तरिकोडिउ सिद्धपत्तु ॥—अप० नि० भ० ।

यह ऊर्जयन्तगिरि पाँच पहाड़ोंमें विभक्त है । पहले पहाड़की एक गुफामें राजुलकी मूर्ति है । राजुलने इसी पर्वतपर दीक्षा ली थी और तप किया था । राजुल तीर्थकर नेमिनाथकी पत्नी बननेवाली थी, पर नेमिनाथके एक निमित्तको लेकर दीक्षित होजानेपर उन्होंने भी दीक्षा ले ली थी और विवाह नहीं कराया था । दूसरे पहाड़से अनिरुद्धकुमार, तीसरेसे शम्भुकुमार, चौथेसे श्रीकृष्णजीके पुत्र प्रद्युम्नकुमार और पाँचवेंसे तीर्थकर नेमिनाथने निर्वाण प्राप्त किया था । इस सिद्धतीर्थकी जैनसमाजमें वही प्रतिष्ठा है जो सम्मदेशिखरकी है । यह सौराष्ट्र (गुजरात)में जूनागढ़के निकट अवस्थित है । तलहटीमें धर्मशालाएँ भी बनी हुई हैं । मदनकीर्तिके पद्य २०के उल्लेखानुसार यहाँ श्रीनेमिनाथकी बड़ी मनोज्ञ और निराभरण मूर्ति रही, जो खास प्रभाव एवं अतिशयको लिये हुए थी । मालूम नहीं वह मूर्ति अब कहाँ गई, या खण्डित हो चुकी है, क्योंकि अब वहाँ चरणचिह्न ही पाये जाते हैं ।

## ६. चम्पापुर

बारहवें तीर्थकर वासुपूज्यका यह गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्षका स्थान है । अतएव यह सिद्धतीर्थ और अतिशय तीर्थ दोनों है । स्वामी पूज्यपादने लिखा है कि चम्पापुरमें वसुपूज्यसुत भगवान् वासुपूज्यने रागादि कर्मबन्धको नाशकर सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त की है । यथा—

चम्पापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान् ।

सिद्धि परामुपगतो गतरागबन्धः ॥—सं० नि० भ० २२ ।

यही निर्वाणकाण्ड और अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिमें कहा है—

(क) 'चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो'—नि० का० १ ।

(ख) पुणु चंपनयरि जिणु वासुपुज्ज, णिव्वाणपत्तु छंडेवि रज्जु ।—अ० नि० भ० ।

इस तरह चम्पापुरको जैनसाहित्यमें एक पूज्य तीर्थ माना गया है । इसके सिवाय, जैनग्रन्थोंमें चम्पापुरकी प्राचीन दस राजधानियोंमें भी गिनती की गई है और उसे एक समृद्ध नगर बतलाया गया है ।

यह चम्पापुर वर्तमानमें एक गाँवके रूपमें मौजूद है और भागलपुरसे ६ मीलकी दूरीपर है । मदनकीर्तिके उल्लेखानुसार यहाँ १२वें तीर्थकर वासुपूज्यकी अतिशयपूर्ण मूर्ति रही है, जिसकी देव-मनुष्यादि पुष्प-निचयसे बड़ी भक्ति पूजा करते थे । प्रतीत होता है कि चम्पापुरके पास जो मन्दरगिरि है उससे सटा हुआ

१. डा० जगदीशचन्द्रकृत "जैनग्रन्थोंमें भौगोलिक सामग्री और भारतवर्षमें जैनधर्मका प्रचार" शीर्षक लेख, प्रेमी-अभिनन्दनग्रन्थ पृष्ठ २५४ ।

एक तालाब है। इस तालाबके कमल ही मदनकीर्तिको पद्य २१ में उल्लिखित पुष्पनिचय विवक्षित हुए हैं—  
उनसे भक्तजन उनकी पूजा करते होंगे।

### ७. विपुलगिरि

राजगृहके निकट विपुलगिरि, वैभागिरि, कुण्डलगिरि अथवा पाण्डुकगिरि; ऋषिगिरि और बलाहक-गिरि ये पाँच पहाड़ स्थित हैं। बौद्ध-ग्रन्थोंमें इनके वेपुल्ल, वेभार, पाण्डव, इसिगिलि और गिज्जकूट ये नाम पाये जाते हैं। इन पाँच पहाड़ोंका जैनग्रन्थोंमें विशेष महत्त्व वर्णित है। इनपर अनेक ऋषि-मुनियोंने तपश्चर्या कर मोक्ष-साधन किया है। आचार्य पूज्यपादने इन्हें सिद्धक्षेत्र बतलाया है और लिखा है कि इन पहाड़ोंसे अनेक साधुओंने कर्म-मल नशाकर सुगति प्राप्त की है। यथा—

द्रोणीमति प्रवरकुण्डल-मेढ्रके च  
वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे ।  
ऋष्यद्रिके च विपलाद्रि-बलाहके च

\* \* \*

ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः

स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ।—नि० भ० २९, ३० ।

इन पाँचोंमें 'विपुलगिरि'का तो और भी ज्यादा महत्त्व है; क्योंकि उसपर अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान-महावीरका अनेकबार समवशरण भी आया है और वहाँसे उन्होंने मुमुक्षुओंको मोक्षमार्गका उपदेश किया है। मदनकीर्तिने पद्य ३०में यहाँके प्रभावपूर्ण जिनबिम्बका उल्लेख किया है। जान पड़ता है उसका अतिशय लोकविश्रुत था। सम्भव है जो विपुलगिरिपर प्राचीन जिनमन्दिर बना हुआ है और जो आज खण्डहरके रूपमें वहाँ मौजूद है उसीमें उल्लिखित जिनबिम्ब रहा होगा। अब यह खण्डहर श्वेताम्बरसमाजके अधिकार-में है। इसकी खुदाई होनेपर जैन पुरातत्त्वकी पर्याप्त सामग्री मिलनेकी सम्भावना है।

### ८. विन्ध्यगिरि

आचार्य पूज्यपादने 'विन्ध्यगिरि'को सिद्धक्षेत्र कहा है और वहाँसे अनेक साधुओंके मोक्ष प्राप्त करनेका समुल्लेख किया है। यह विन्ध्यगिरि विन्ध्याचल जान पड़ता है जो मध्यप्रान्तमें रेवा (नर्मदा) के किनारे-किनारे बहुत दूर तक पाया जाता है और जिसकी कुछ छोटी-छोटी पहाड़ियाँ आस-पास अवस्थित हैं। मदनकीर्तिने पद्य ३२ में इसी विन्ध्यगिरि अथवा विन्ध्याचलके जिनमन्दिरोंका, निर्देश किया प्रतीत होता है। झाँसीके पास एक देवगढ़ नामक स्थान है जो एक सुन्दर पहाड़ीपर स्थित है। वहाँ विक्रमकी १०वीं शताब्दीके आस-पास बहुत मन्दिर बने हैं।<sup>२</sup> ये मन्दिर शिल्पकला तथा प्राचीन कारीगरीकी दृष्टिसे उल्लेखनीय हैं। भारत सरकारके पुरातत्त्वविभागको यहाँसे २०० के लगभग शिलालेख प्राप्त हुए हैं। उनमें ६० पर तो समय भी अङ्कित है। सबसे पुराना लेख वि० सं० ९१९ का है और अर्वाचीन सं० १८७६ का है। यह भी हो सकता है कि पूज्यपाद और मदनकीर्तिने जिस विन्ध्यगिरिकी सूचना की है वह मैसूर प्रान्तके हासन जिलेके चेन्नरायपाटन तालुकेमें पायी जानेवाली विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि नामकी दो सुन्दर पहाड़ियोंमेंसे पहली पहाड़ी विन्ध्यगिरि हो।<sup>३</sup> यह पहाड़ी 'दोड्डवेट्ट' अर्थात् बड़ी पहाड़ीके नामसे प्रसिद्ध है। इसपर

१. 'विन्ध्ये च पौदनपुरे वृषदीपके च'—नि० भ० ।

२. कल्याणकुमार शशिकृत 'देवगढ़' नामक पुस्तककी प्रस्तावना ।

३. जैनशिलालेखसंग्रह' प्रस्तावना पृ० २ ।

आठ जिनमन्दिर बने हुए हैं। गोम्मटेश्वरकी संसारप्रसिद्ध विशाल मूर्ति इसीपर उत्कीर्ण है, जिसे चामुण्डराय-ने विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें निर्मित कराया था। अतएव इस प्रसिद्ध मूर्तिके कारण पर्वतपर और भी कितने ही जिनमन्दिर बनवाये गये होंगे और इसलिए उनका भी प्रस्तुत रचनामें उल्लेख सम्भव है। यह पहाड़ी अनेक साधु-महात्माओंकी तपःभूमि रही है। अतः विन्ध्यगिरि सिद्धतीर्थ तथा अतिशयतीर्थ दोनों हैं।

## अतिशयतीर्थ

मदनकीर्तिद्वारा उल्लिखित १८ अतिशयतीर्थों अथवा सातिशय जिनबिम्बोंका भी यहाँ कुछ परिचय दिया जाता है।

## श्रीपुर-पार्श्वनाथ

जैन साहित्यमें श्रीपुरके श्रीपार्श्वनाथका बड़ा माहात्म्य और अतिशय बतलाया गया है और उस स्थानको एक पवित्र तथा प्रसिद्ध अतिशयतीर्थके रूपमें उल्लेखित किया गया है। निर्वाणकाण्डमें जिन अतिशय-तीर्थोंका उल्लेख है उनमें 'श्रीपुर' का भी निर्देश है और वहाँके पार्श्वनाथकी वन्दना की गई है।<sup>१</sup> मुनि उदयकीर्तिने भी अपनी अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिमें श्रीपुरके पार्श्वनाथका अतिशय प्रदर्शित करते हुए उनकी वन्दना की है।<sup>२</sup> मदनकीर्तिसे कोई सौ-वर्ष बाद होनेवाले श्वेताम्बर विद्वान् जिनप्रभसूरिने भी अपने 'विविध तीर्थकल्प'में एक 'श्रीपुर-अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकल्प' दिया है और उसमें इस अतिशयतीर्थका वर्णन करते हुए उसके सम्बन्धमें एक कथाको भी निबद्ध किया है।<sup>३</sup> कथाका सारांश यह है कि 'लङ्काधीश दशग्रीवने माली सुमाली नामके अपने दो सेवकोंको कहीं भेजा। वे विमानमें बैठे हुए आकाशमार्गसे जा रहे थे कि जाते-जाते भोजनका समय हो गया। सुमालीको ध्यान आया कि जिनेन्द्र प्रतिमाको घर भूल आये और बिना देवपूजाके भोजन नहीं कर सकते। उन्होंने विद्याबलसे पवित्र बालूद्वारा भाविजिन श्रीपार्श्वनाथकी नवीन प्रतिमा बनाई। दोनोंने उसकी पूजा की और फिर भोजन किया। पश्चात् उस प्रतिमाको निकटवर्ती तालाबमें विराजमानकर आकाशमार्गसे चले गये। वह प्रतिमा शासनदेवताके प्रभावसे तालाबमें अखण्डितरूपमें बनी रही। कालान्तरमें उस तालाबका पानी कम हो गया और सिर्फ उसी गड्ढेमें रह गया जहाँ वह प्रतिमा स्थित थी। किसी समय एक श्रीपाल नामका राजा, जिसे भारी कोढ़ था, घूमता हुआ वहाँ पहुँचा और पहुँचकर उस पानीसे अपना हाथ मुँह धोकर अपनी पिपासा शान्त की। जब वह घर लौटा, तो उसकी रानीने उसके हाथ-मुँहको कोढ़रहित देखकर पुनः उसी पानीसे स्नान करनेके लिए राजासे कहा। राजाने वैसा किया और उसका सर्व कोढ़ दूर हो गया। रानीको देवताद्वारा स्वप्नमें इसका कारण मालूम हुआ कि वहाँ पार्श्वजिनकी प्रतिमा विराजमान है और उसीके प्रभावसे यह सब हुआ है। फिर वह प्रतिमा अन्तरिक्षमें स्थित हो गई। राजाने वहाँ अपने नामाङ्कित श्रीपुरनगरको बसाया। अनेक महोत्सवोंके साथ उस प्रतिमाकी वहाँ प्रतिष्ठा की गई। तीनों काल उसकी पूजा हुई। आज भी वह प्रतिमा उसी तरह अन्तरिक्षमें स्थित है। पहले वह प्रतिमा इतने अधर थी कि उसके नीचेसे शिरपर घड़ा रक्खे हुए स्त्री निकल जाती थी, परन्तु कालवश अथवा भूमिरचनावश या मिथ्यात्वादिसे दूषित कालके प्रभावसे अब वह प्रतिमा इतने नीचे

१. यथा—'पासं सिरपुरि वंदमि'.....'—निर्वाणका०।

२. यथा—'अहं वंदउं सिरपुरि पासनाहु,  
जो अंतरिक्षि छइ पाणलाहु।

३. सिंधी ग्रन्थमालासे प्रकाशित 'विविधतीर्थकल्प' पृ० १०२।

हो गई कि एक चादर (धागा ?)का अन्तर रह गया है । इस प्रतिमाके अभिषेक जलसे दाद, खाज, कोढ़ आदि रोग शान्त होते हैं ।” लगभग यही कथा मुनि श्रीशीलविजयजीने अपनी ‘तीर्थमाला’में दी है और श्रीपुरके पार्श्वनाथका लोकविश्रुत प्रभाव प्रदर्शित किया है । मुनिजीने विक्रम सं० १७३१-३२ में दक्षिणके प्रायः समस्त तीर्थोंकी वन्दना की थी, उसीका उक्त पुस्तकमें वर्णन निबद्ध है ।<sup>१</sup> यद्यपि उक्त कथाओंका ऐतिहासिक आधार तथ्यभूत है अथवा नहीं, इसका निर्णय करना कठिन है फिर भी इतना अवश्य है कि उक्त कथाएँ एक अनुश्रुति हैं और काफी पुरानी हैं । कोई आश्चर्य नहीं कि उक्त प्रतिमाके अभिषेकजलको शरीरमें लगानेसे दाद, खाज और कोढ़ जैसे रोग अवश्य नष्ट होते होंगे और इसी कारण उक्त प्रतिमाका अतिशय लोकमें दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया होगा । विक्रमकी नवमी शताब्दीके प्रखर तार्किक आचार्य विद्यानन्द जैसे विद्वानाचार्य भी श्रीपुरके पार्श्वनाथकी महिमासे प्रभावित हुए हैं और उनका स्तवन करनेमें प्रवृत्त हुए हैं । अर्थात् श्रीपुरके पार्श्वनाथको लक्ष्यकर उन्होंने भक्तिपूर्ण ‘श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र’की रचना की है । गङ्गनरेश श्रीपुरुषके द्वारा श्रीपुरके जैनमन्दिरके लिए दान दिये जानेका उल्लेख करनेवाला ई० सन् ७७६ का एक ताम्रपत्र भी मिला है ।<sup>२</sup> इन सब बातोंसे श्रीपुरके पार्श्वनाथका ऐतिहासिक महत्त्व और प्रभाव स्पष्टतया जान पड़ता है ।

अब विचारणीय यह है कि यह श्रीपुर कहाँ है—उसका अवस्थान किस प्रान्तमें है ?

प्रेमीजीका अनुमान है<sup>३</sup> कि धारवाड़ जिलेका जो शिखर गाँव है और जहाँसे शक सं० ७८७का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है तथा जो इण्डियन ए. भाग १२ पृ० २१६में प्रकाशित हो चुका है, वही प्रस्तुत श्रीपुर है । कुछ पार्श्वनाथ विद्वान् लेखकोंने वेसिङ्ग जिलेके ‘सिरपुर’ स्थानको एक प्रसिद्ध जैनतीर्थ बतलाया है और वहाँ प्राचीन पार्श्वनाथका मन्दिर होनेकी सूचनाएँ की हैं । गङ्गनरेश श्रीपुरुष (ई० ७७६) और आचार्य विद्यानन्द (ई० ७७५-८४०)को<sup>४</sup> इष्ट श्रीपुर ही प्रस्तुत श्रीपुर जान पड़ता है और जो मैसूर प्रान्तमें कहीं होना चाहिए, ऐसा भी हमारा अनुमान है ।<sup>५</sup> विद्वानोंको उसकी पूरी खोज करके ठीक स्थितिपर पूरा प्रकाश डालना चाहिये ।

मदनकीर्तिने इस तीर्थका उल्लेख पद्य ३ में किया है और उसका विशेष अतिशय ख्यापित किया है ।

### हुलगिरि-शङ्खजिन

श्रीपुरके पार्श्वनाथकी तरह हुलगिरिके शङ्खजिनका भी अतिशय जैनसाहित्यमें प्रदर्शित किया गया है ।

इस तीर्थके सम्बन्धमें जो परिचय-ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें मदनकीर्तिकी प्रस्तुत शासनचतुस्त्रिशिका सबसे प्राचीन और प्रथम रचना है । इसके पद्य ४ में लिखा है कि—“प्राचीन समयमें एक धर्मात्मा व्यापारी गौनमें शङ्खोंको भरकर कहीं जा रहा था । रास्तेमें उसे हुलगिरिपर रात हो गई । वह वहीं बस गया । सुबह उठकर जब चलने लगा तो उसकी वह शङ्खोंकी गौन अचल हो गई—चल नहीं सकी । जब उसमेंसे

१. ‘जैनसाहित्य और इतिहास’ पृ० २२७ ।
२. जैनसि० भा०, भा० ४ किरण ३, पृ० १५८ ।
३. जैनसाहित्य और इतिहास पृ० २३७ ।
४. आप्तपरीक्षा, प्रस्तावना, वीरसेवामन्दिर-संस्करण ।
५. डा० दरबारीलाल कोठिया, श्रीपुर-पार्श्वनाथ-स्तोत्र, प्रस्तावना, वीरसेवामन्दिर-संस्करण ।

शङ्खजिन (पार्श्वनाथ) का आविर्भाव हुआ तो वह चल सकी। इस अतिशयके कारण हुलगिरि शङ्खजिनेन्द्रका तीर्थ माना जाने लगा। अर्थात् तबसे शङ्खजिनतीर्थ प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ।” मदनकीर्तिसे एक शताब्दी बाद होनेवाले जिनप्रभसूरि अपने ‘विविधतीर्थकल्प’ गत ‘शङ्खपुर-पार्श्वनाथ’ नामक कल्पमें शङ्खजिनका परिचय देते हुए लिखते हैं कि “प्राचीन समयकी बात है कि नवमे प्रतिनारायण जरासन्ध अपनी सेनाको लेकर राजगृहसे नवमे नारायण कृष्णसे युद्ध करनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओर गये। कृष्ण भी अपनी सेना लेकर द्वारकासे निकलकर उसके सम्मुख अपने देशकी सीमापर जा पहुँचे। वहाँ भगवान् अरिष्टनेमिने शङ्ख बजाया और शंखेश्वर नामका नगर बसाया। शङ्खकी आवाजकी सुनकर जरासन्ध क्षोभित हो गया और जरा नामकी कुलदेवताकी आराधना करके उसे कृष्णकी सेनामें भेज दिया। जराने कृष्णकी सारी सेनाको श्वास रोगसे पीड़ित कर दिया। जब कृष्णने अपनी सेनाका यह हाल देखा तो चिन्तानुर होकर अरिष्टनेमिसे पूछा कि ‘भगवन् ! मेरी यह सेना कैसे निरुपद्रव (रोगरहित) होगी और कैसे विजयश्री प्राप्त होगी !’ तब भगवान्ने अवधिज्ञानसे जानकर कहा कि ‘भूगर्भमें नागजातिके देवोंद्वारा पूजित भाविजिन पार्श्वकी प्रतिमा स्थित है। यदि तुम उसकी पूजा-आराधना करो तो उससे तुम्हारी सारी सेना निरुपद्रव हो जायगी और विजयश्री भी मिलेगी।’ इस बातको सुनकर कृष्णने सात मास और तीन दिन तक निराहार विधिसे नागेन्द्रकी उपासना की। नागेन्द्र प्रकट हुआ और उससे सबहुमान पार्श्वजिनेन्द्रकी प्रतिमा प्राप्त की। बड़े उत्सवके साथ उसकी अपने देवताके स्थानमें स्थापनाकर त्रिकाल पूजा की। उसके अभिषेकजलको सेनापर छिड़कते ही उसका वह सब श्वासरोगादि उपद्रव दूर हो गया और सेना लड़नेके समर्थ हो गई। जरासन्ध और कृष्ण दोनोंका युद्ध हुआ, युद्धमें जरासन्ध हार गया और कृष्णको विजयश्री प्राप्त हुई। इसके बाद वह प्रतिमा समस्त विघ्नोंको नाश करने और ऋद्धि-सिद्धियोंको पैदा करनेवाली हो गई। और उसे वहीं शङ्खपुरमें स्थापित कर दिया। कालान्तरमें वह प्रतिमा अन्तर्धान हो गई। फिर वह एक शङ्खकूपमें प्रकट हुई। वहाँ वह आज तक पूजी जाती है और लोगोंके विघ्नादिको दूर करती है। यवन राजा भी उसकी महिमा (अतिशय) का वर्णन करते हैं।” मुनि शीलविजयजीने भी तीर्थमालामें एक कथा दी है जिसका आशय यह है कि ‘किसी यक्षने श्रावकोंसे कहा कि नौ दिन तक एक शङ्खको फूलोंमें रखो और फिर दसवें दिन दर्शन करो। इसपर श्रावकोंने नौ दिन ऐसा ही किया और नवें दिन ही उसे देख लिया और तब उन्होंने शङ्खको प्रतिमारूपमें परिवर्तित पाया, परन्तु प्रतिमाके पैर शङ्खरूप ही रह गये, अर्थात् यह दशवें दिनकी निशानी रह गई। शङ्खमेंसे नेमिनाथ प्रभु प्रकट हुए और इस प्रकार वे ‘शङ्खपरमेश्वर’ कहलाये।’ निर्वाणकाण्ड और अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिके रचयिताओंने भी होलागिरिके शङ्खदेवका उल्लेख करके उनकी वन्दना की है।

यथा—

(क) ‘.....वंदमि होलागिरी संखदेवं पि ।’—नि० का० २४।

(ख) ‘होलागिरि संखुजिणेंदु देउ,  
विज्ञणणरिंदु ण वि लद्ध छेउ ।’—अ० नि० भ०।

यद्यपि अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिकारने विज्ञण (विन्ध्य ?) नरेन्द्रके द्वारा उनकी महिमाका पार न पा सकनेका भी उल्लेख किया है, पर उससे विशेष परिचय नहीं मिलता। ऊपरके परिचयोंमें भी प्रायः कुछ विभिन्नता है फिर भी इन सब उल्लेखों और परिचयोंसे इतना स्पष्ट है कि शङ्खजिन तीर्थ रहा है और जो

१. ‘विविधतीर्थकल्प’ पृ० ५२।

२. प्रेमोजी कृत ‘जैनसाहित्य और इतिहास’ (पृ० २३७) से उद्धृत।

काफी प्रसिद्ध रहा है तथा जिनप्रभसूरिके उल्लेखानुसार वह यवन राजाओं द्वारा प्रशंसित और वर्णित भी रहा है। श्रीभानुकीर्तिने शङ्खदेवाष्टक<sup>१</sup>, श्रीजयन्तविजयने शंखेश्वर महातीर्थ<sup>२</sup> और श्रीमणिलाल लालचन्दने शंखेश्वरपार्श्वनाथ<sup>३</sup> जैसी स्वतन्त्र रचनाएँ भी शङ्खजिनपर लिखी हैं।

शङ्खजिनतीर्थकी अवस्थितिपर विचार करते हुए प्रेमीजीने लिखा है<sup>४</sup>—

‘अतिशयक्षेत्रकाण्डमें “होलगिरि संखदेवं पि” पाठ है, जिससे मालूम होता है कि होलगिरि नामक पर्वतपर शङ्खदेव या शंखेश्वर पार्श्वनाथ नामका कोई तीर्थ है। मालूम नहीं, इस समय वह ज्ञात है या नहीं।’—

जैनसाहित्य और इतिहासको प्रस्तुत करते हुए अब उन्होंने उसमें लिखा है<sup>५</sup>—

‘लक्ष्मेश्वर धारवाड़ जिलेमें मिरजके पटवर्धनकी जागीरका एक गाँव है। इसका प्राचीन नाम ‘पुलगेरे’ है। यहाँ ‘शङ्ख-वस्ति’ नामका एक विशाल जैनमन्दिर है जिसकी छत ३६ खम्भोंपर थमी हुई है। यात्री (मुनि शीलविजय) ने इसीको ‘शङ्ख-परमेश्वर’ कहा जान पड़ता है। इस शङ्ख-वस्तिमें छह शिलालेख प्राप्त हुए हैं। शक संवत् ६५६ के लेखके अनुसार चालुक्य-नरेश विक्रमादित्य (द्वितीय) ने पुलगेरेकी शंखतीर्थ-वस्तीका जीर्णोद्धार कराया और जिनपूजाके लिये भूमि दान की। इससे मालूम होता है कि उक्त वस्ति इससे भी प्राचीन है। हमारा (प्रेमीजीका) अनुमान है कि अतिशयक्षेत्रकाण्डमें कहे गये शंखदेवका स्थान यही है। जान पड़ता है कि लेखकोंकी अज्ञानतासे ‘पुलगेरे’ ही किसी तरह ‘होलगिरि’ हो गया है।’

मुनि शीलविजयजीने दक्षिणके तीर्थक्षेत्रोंकी पैदल वन्दना की थी और जिसका वर्णन उन्होंने ‘तीर्थ-माला’में किया है। वे धारवाड़ जिलेके बङ्कापुरको, जिसे राष्ट्रकूट महाराज अमोघवर्ष (८५१-६९) के सामन्त ‘बंकेयेरस’ ने अपने नामसे बसाया था<sup>६</sup>, देखते हुए इसी जिलेके लक्ष्मेश्वरपुर तीर्थ पहुँचे थे और वहाँके ‘शंखपरमेश्वर’की वन्दना की थी, जिनके बारेमें उन्होंने पूर्वोल्लिखित एक अनुश्रुति दी है। प्रेमीजीने इनके द्वारा वर्णित उक्त ‘लक्ष्मेश्वरपुर तीर्थ’ पर टिप्पण देते हुए ही अपना उक्त विचार उपस्थित किया है और पुलगेरेको शंखदेवका तीर्थ अनुमानित किया है तथा होलगिरिको पुलगेरेका लेखकोंद्वारा किया गया भ्रान्त उल्लेख बतलाया है।

पुलगेरेका होलगिरि या हुलगिरि अथवा होलगिरि हो जाना कोई असम्भव नहीं है। देशभेद और कालभेद तथा अपरिचितिके कारण उक्त प्रकारके प्रयोग बहुधा हो जाते हैं। मुनिसुवतनाथकी प्रतिमा जहाँ प्रकट हुई उस स्थानका तीन लेखकोंने तीन तरहसे उल्लेख किया है। निर्वाणकाण्डकार ‘अस्सारम्मे पट्टणि’ कहकर ‘आशारम्भ’ नामक नगरमें उसका प्रकट होना बतलाते हैं और अपभ्रंशनिर्वाणभक्तिकार मुनि उदयकीर्ति ‘आसरंमि’ लिखकर ‘आश्रम’में उसका आविर्भाव कहते हैं। मदनकीर्ति उसे ‘आश्रम’ वर्णित करते हैं और जिनप्रभसूरि आदि विद्वान् प्रतिष्ठानपुर मानते हैं। अतएव देशादि भेदसे यदि

१. माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें प्रकाशित सिद्धान्तसारादिसंग्रहमें सङ्कलित।

२. विजयवर्मसूरि-ग्रन्थमाला, उज्जैनसे प्रकाशित।

३. सस्तीवाचनमाला अहमदाबादसे मुद्रित।

४. सिद्धान्तसारादिसंग्रहकी प्रस्तावना पृ० २८ का फुटनोट।

५. ‘जैनसाहित्य और इतिहास’ पृ० २३६-२३७ का फुटनोट।

६. प्रेमीजी कृत ‘जैनसाहित्य और इतिहास’ पृ० २३६ का फुटनोट।



पुलगेरेका हुलगिरि या होलागिरि आदि बन गया हो तो आश्चर्यकी बात नहीं है। अतः जब तक कोई दूसरे स्पष्ट प्रमाण हुलगिरि या होलागिरिके अस्तित्वके साधक नहीं मिलते तब तक प्रेमीजीके उक्त विचार और अनुमानको ही मान्य करना उचित जान पड़ता है।

### धारा-पादर्वनाथ

धाराके पार्श्वनाथके सम्बन्धमें मदनकीर्तिके पद्य ५ के उल्लेखके सिवाय और कोई परिचायक उल्लेख अभी तक नहीं मिले और इस लिये उसके बारेमें इस समय विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता।

### बृहत्पुर-बृहद्देव

मदनकीर्तिके पद्य ६ में बृहत्पुरके बृहद्देवकी ५७ हाथकी विशाल प्रस्तर मूर्तिका उल्लेख किया है, जिसे अर्ककीर्ति नामके राजाने बनवाया था। जान पड़ता है यह 'बृहत्पुर' बड़वानीजी है, जो उसीका अपभ्रंश (बिगड़ा हुआ) प्रयोग है और 'बृहद्देव' वहाँके मूलनायक आदिनाथका सूचक है। बड़वानीमें श्रीआदिनाथकी ५७ हाथकी विशाल प्रस्तर मूर्ति प्रसिद्ध है और जो बावनगजाके नामसे विख्यात है। बृहद्देव पुरुदेवका पर्यायवाची है और पुरुदेव आदिनाथका नामान्तर है। अतएव बृहत्पुरके बृहद्देवसे मदनकीर्तिको बड़वानीके श्रीआदिनाथके अतिशयका वर्णन करना विवक्षित मालूम होता है। इस तीर्थके बारेमें संक्षिप्त परिचय देते श्रीयुत पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने अपनी 'जैनधर्म' नामक पुस्तकके 'तीर्थक्षेत्र' प्रकरण (पृ० ३३५) में लिखा है :—

'बड़वानीसे ५ मील पहाड़पर जानेसे बड़वानी क्षेत्र मिलता है।.....क्षेत्रकी वन्दनाको जाते हुए सबसे पहले एक विशालकाय मूर्तिके दर्शन होते हैं। यह खड़ी हुई मूर्ति भगवान ऋषभदेवकी है, इसकी ऊँचाई ८४ फीट है। इसे बावनगजाजी भी कहते हैं। सं० १२२३ में इसके जीर्णोद्धार होनेका उल्लेख मिलता है। पहाड़पर २२ मन्दिर हैं। प्रतिवर्ष पौष सुदी ८ से १५ तक मेला होता है।'

बड़वानी मालवा प्रान्तका एक प्राचीन प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र है और जो इन्दौरके पास है। निर्वाणकाण्ड<sup>१</sup> और अपभ्रंश निर्वाणभक्ति<sup>२</sup>के रचयिताओंने भी इस तीर्थका उल्लेख किया है।

### जैनपुरके दक्षिण गोम्मटदेव

'जैनपुर' जैनबिद्री व श्रवणवेलगोलाका प्राचीन नाम है। गङ्गनरेश राचमल्ल (ई० ९७४-९८४) के सेनापति और मन्त्री चामुण्डरायने वहाँ बाहुबलि स्वामीकी ५७ फीट ऊँची खड्गासन विशाल पाषाणमूर्ति बनवाई थी। यह मूर्ति एक हजार वर्षसे जाड़े, गर्मी और बरसातकी चोटोंको सहती हुई उसी तरह आज भी वहाँ विद्यमान है और संसारकी प्रसिद्ध वस्तुओंमेंसे एक है। इस मूर्तिकी प्रशंसा करते हुए काका कालेलकरने अपने एक लेखमें लिखा है<sup>३</sup>:—

'मूर्तिका सारा शरीर भरावदार, यौवनपूर्ण, नाजुक और कान्तिमान है। एक ही पत्थरसे निर्मित इतनी सुन्दर मूर्ति संसारमें और कहीं नहीं। इतनी बड़ी मूर्ति इतनी अधिक स्निग्ध है कि भक्तिके साथ कुछ प्रेमकी भी यह अधिकारिणी बनती है। धूप, हवा और पानीके प्रभावसे पीछेकी ओर ऊपरकी पपड़ी खिर पड़नेपर भी इस मूर्तिका लावण्य खण्डित नहीं हुआ है।'

१. नि० का० गाथा नं० १२।

२. अ० नि० भ० गाथा नं० ११।

३. जैनधर्म पृ० ३४२ से उद्धृत।

डाक्टर हीरालाल जैन लिखते हैं—‘यह नग्न, उत्तरमुख खड्गासन मूर्ति समस्त संसारकी आश्चर्यकारी वस्तुओंमेंसे है ।.....एशिया खण्ड ही नहीं, समस्त भूतलका विचरण कर आइये, गोम्मटेश्वरकी तुलना करनेवाली मूर्ति आपको क्वचित् ही दृष्टिगोचर होगी । बड़े-बड़े पश्चिमीय विद्वानोंके मस्तिष्क इस मूर्तिकी कारीगरीपर चक्कर खा गये हैं । इतने भारी और प्रबल पाषाणपर सिद्धहस्त कारीगरने जिस कौशलसे अपनी छैनी चलाई है उससे भारतके मूर्तिकारोंका मस्तक सदैव गर्वसे ऊँचा उठा रहेगा । यह सम्भव नहीं जान पड़ता कि ५७ फुटकी मूर्ति खोद निकालनेके योग्य पाषाण कहीं अन्यत्रसे लाकर इस ऊँची पहाड़ीपर प्रतिष्ठित किया जा सका होगा । इससे यही ठीक अनुमान होता है कि उसी स्थानपर किसी प्रकृतिदत्त स्तम्भाकार चट्टानको काटकर इस मूर्तिकी आविष्कार किया गया है । कम-से-कम एक हजार वर्षसे यह प्रतिमा सूर्य, मेघ, वायु आदि प्रकृतिदेवीकी अमोघ शक्तियोंसे वातें कर रही है । पर अब तक उसमें किसी प्रकारकी थोड़ी भी क्षति नहीं हुई । मानो मूर्तिकारने उसे आज ही उद्धटित की हो ।’

इस मूर्तिके बारेमें मदनकीर्तिके पद्य ७ में लिखा है कि ‘पाँचसी आदमियोंके द्वारा इस विशाल मूर्तिकी निर्माण हुआ था और आज भी देवगण उसकी सविशेष पूजा करते हैं ।’ प्राकृत निर्वाणकाण्ड<sup>२</sup> और अपभ्रंश निर्वाणभक्ति<sup>३</sup>में भी देवोंद्वारा उसकी पूजा होने तथा पुष्पवृष्टि (केशरकी वर्षा) करनेका उल्लेख है । इन सब वर्णनोंसे जैनपुरके दक्षिण गोम्मटदेवकी महिमा और प्रभावका अच्छा परिचय मिलता है ।

### विश्वसेन नृपद्वारा निष्कासित शान्तिजिन

मदनकीर्ति और उदयकीर्तिके उल्लेखोंसे मालूम होता है कि विश्वसेन नामके किसी राजा द्वारा समुद्रसे श्रीशान्ति जिनेश्वरकी प्रतिमा निकाली गई थी, जिसका यह अतिशय था कि उसके प्रभावसे लोगोंके क्षुद्र उपद्रव दूर होते थे और लोगोंको बड़ा सुख मिलता था । यद्यपि मदनकीर्तिके पद्य ९के उल्लेखसे यह ज्ञात नहीं होता कि शान्तिजिनेश्वरकी उक्त प्रतिमा कहाँ प्रकट हुई ? पर उदयकीर्तिके निर्देशसे<sup>४</sup> विदित होता है कि वह प्रतिमा मालवतीमें प्रकट हुई थी । मालवती सम्भवतः मालवाका ही नाम है । अस्तु ।

### पुष्पपुर-पुष्पदन्त

पुष्पपुर पटना (बिहार) का प्राचीन नाम है । संस्कृत साहित्यमें पटनाको पाटलिपुत्रके सिवाय कुसुमपुरके नामसे भी उल्लेखित किया गया है<sup>५</sup> । अतएव पुष्पपुर पटनाका ही नामान्तर जान पड़ता है । मदनकीर्तिके पद्य १२ के उल्लेखानुसार वहाँ श्रीपुष्पदन्त प्रभुकी सातिशय प्रतिमा भूगर्भसे निकली थी, जिसकी व्यन्तरदेवों द्वारा बड़ी भक्तिसे पूजा की जाती थी । मदनकीर्तिके इस सामान्य परिचयोल्लेखके अलावा पुष्पपुरके श्रीपुष्पदन्तप्रभुके बारेमें अभीतक और कोई उल्लेख या परिचयादि प्राप्त नहीं हुआ ।

१. शिलालेखसंग्रह, प्रस्तावना पृ० १७-१८ ।

२. गोम्मटदेवं वंदमि पंचसयं धणुह-देह-उच्चत्तं ।

देवा कुणति बुट्टी केसर-कुसुमाण तस्स उवरिम्मि ॥२५॥

३. वंदिज्जइ गोम्मटदेउ तित्थु, जसु अणु-दिण पणवइं सुरहं सत्थु ।

४. मालव संति वंदउ पवित्तु, विससेणराय कड्डिउ निरुत्तु ॥

५. ‘विविधतीर्थकल्प’ गत ‘पाटलिपुत्रनगरकल्प’ पृ० ६८ ।

## नागद्रह-नागहृद्देश्वर

विविधतीर्थकल्पमें चौरासी तीर्थोंके नामोंको गिनाते हुए उसके कर्ता जिनप्रभसूरिने नागद्रह अथवा नागहृदमें श्रीनागहृद्देश्वर (पार्श्वनाथ) तीर्थका निर्देश किया है<sup>१</sup>। प्राकृतनिर्वाणकाण्डकार<sup>२</sup> तथा उदयकीर्तिने भी नागद्रहमें श्रीपार्श्वस्वयम्भुदेवकी वन्दना की है<sup>३</sup>। इस तीर्थके उपलब्ध उल्लेखोंमें मदनकीर्तिका पद्य १३ गत उल्लेख प्राचीन है और कुछ सामान्य परिचयको भी लिये हुए है। इस परिचयमें उन्होंने लिखा है कि श्रीनागहृद्देश्वर जिन कोढ़ आदि अनेक प्रकारके रोगों तथा अनिष्टोंको दूर करनेसे लोगोंके विशेष उपास्य थे और उनका यह अतिशय लोकमें प्रसिद्धिको प्राप्त था। इससे प्रकट है कि यह तीर्थ आजसे आठसौ वर्ष पहलेका है। 'नागद्रह' नागदाका प्राचीन नाम मालूम होता है। जो हो।

## पश्चिमसमुद्रतटस्थ चन्द्रप्रभ

मदनकीर्तिने पद्य १६ में पश्चिम समुद्रतटके जिन चन्द्रप्रभ प्रभुका अतिशय एवं प्रभाव वर्णित किया है उनका स्थान कहाँ है? उदयकीर्तिने उन्हें पश्चिम समुद्रपर स्थित तिलकापुरीमें बतलाया है<sup>४</sup>। यह तिलकापुरी सम्भवतः सिन्ध और कच्छके आस-पास कहाँ रही होगी। अपने समयमें यह तीर्थ काफी प्रसिद्ध रहा प्रतीत होता है।

## छाया-पार्श्वप्रभु

इस तीर्थका मुनि मदनकीर्ति, जिनप्रभसूरि और मानवसंहिताकार शान्तिविजय इन तीन विद्वानोंने उल्लेख किया है। मदनकीर्तिने पद्य १७ के द्वारा उसे सिद्धशिलापर और जिनप्रभसूरि<sup>५</sup> तथा शान्तिविजयने<sup>६</sup> माहेन्द्र पर्वत और हिमालय पर्वतपर बतलाया है। आश्चर्य नहीं मदनकीर्तिको सिद्धशिलासे माहेन्द्रपर्वत अथवा हिमालय ही विवक्षित हो। यदि ऐसा हो तो कहना होगा कि माहेन्द्रपर्वत अथवा हिमालयपर कहीं यह तीर्थ रहा है और वह छायापार्श्वनाथतीर्थके नामसे प्रसिद्ध था। मालूम नहीं, अब उसका कोई अस्तित्व है अथवा नहीं?

## आश्रम-नगर-मुनिसुव्रतजिन

मुनि मदनकीर्तिके पद्य २८ गत उल्लेखानुसार आश्रममें, प्राकृतनिर्वाणकाण्डकारके<sup>७</sup> कथनानुसार आशारम्यनगरमें, मुनि उदयकीर्तिके<sup>८</sup> उल्लेखानुसार आश्रममें और जिनप्रभसूरि<sup>९</sup>, मुनि शीलविजय<sup>१०</sup> तथा शान्तिविजयके<sup>११</sup> वर्णनानुसार प्रतिष्ठानपुर<sup>१२</sup>में गोदावरी (बाणगङ्गा) के किनारे एक शिलापर प्राचीन समयमें

१. 'कलिकुण्डे नागहृदे च श्रीपार्श्वनाथः।'—विविधतीर्थकल्प पृ० ८६।
२. प्रा० नि० का० गाथा २०।
३. 'नायद्दह पासु सयंभुदेउ, हउं वंदउं जसु गुण णत्थि छेव।'।
४. 'पश्चिमसमुद्रससि-संख-वण्णु, तिलयापुरि चंदप्पहवण्णु।'।
५. 'माहेन्द्रपर्वते छायापार्श्वनाथः। हिमाचले छायापार्श्वो मन्त्राधिराजः श्रीस्फुलिगः।'—विविधतीर्थकल्प पृ० ८६।
६. 'माहेन्द्रपर्वतमें छायापार्श्वनाथका तीर्थ है। हिमालय पर्वतमें छाया पार्श्वनाथ मन्त्राधिराज और स्फुलिग पार्श्वनाथका तीर्थ है।'—मानवधर्मसंहिता पृ० ५९९-६०० (वि० सं० १९५५ में प्रकाशित संस्करण)।
७. प्रा० नि० का० गाथा २०। ८ अपभ्रंशनिर्वाणभक्ति गा० ६। ९ विविधतीर्थकल्प पृ० ५९। १० तीर्थमाला। ११ मानवधर्मसंहिता, पृ० ५९९। १२ प्रेमोजीने लिखा है कि इसका वर्तमान नाम पैठण है, जो हैदराबादके औरंगाबाद जिलेकी एक तहसील है—(जैन सा० और इति० पृ० २३८ का फुटनोट)।

श्रीमुनिसुव्रतस्वामीकी प्रतिभा प्रकट हुई, जिसका अतिशय लोकमें खूब फैला और तबसे यह तीर्थ प्रसिद्धिमें आया। उक्त विद्वानोंके लेखों और वर्णनोंसे स्पष्ट है कि विक्रमकी १३वीं, १४वीं शताब्दीमें यह एक बड़ा तीर्थ माना जाता था। और वि० की १८वीं शताब्दी तक प्रसिद्ध रहा तथा यात्री उसकी वन्दनाके लिये जाते रहे हैं। विशेषके लिए इसी ग्रन्थमें प्रकाशित द्रव्यसंग्रहकी प्रस्तावना दृष्टव्य है।

### मेवाड़देशस्थ नागफणी-मल्लिजिनेश्वर

मदनकीर्तिके पद्य ३३ के उल्लेखसे मालूम होता है कि मेवाड़के नागफणी गाँवमें खेतको जोतते हुए एक आदमीको शिला मिली। उस शिलापर श्रीमल्लिजिनेश्वरकी प्रतिभा प्रकट हुई और वहाँ जिनमन्दिर बनवाया गया। जान पड़ता है कि उसी समयसे यह स्थान एक पवित्र क्षेत्रके रूपमें प्रसिद्धिमें आया और तीर्थ माना जाने लगा। यद्यपि यह तीर्थ कबसे प्रारम्भ हुआ, यह बतलाना कठिन है फिर भी यह कहा जा सकता है कि वह सातसौ-साढ़े सातसौ वर्ष प्राचीन तो अवश्य है।

### मालवदेशस्थ मङ्गलपुर-अभिनन्दनजिन

मालवाके मङ्गलपुरके श्रीअभिनन्दनजिनके जिस अतिशय और प्रभावका उल्लेख मदनकीर्तिने पद्य ३४ में किया है उसका जिनप्रभसूरिने भी अपने 'विविधतीर्थकल्प' गत 'अवन्तिदेशस्थ-अभिनन्दनदेवकल्प' नामके कल्प (पृ० ५७) में निर्देश किया है और साथमें एक कथा भी दी है। उस कथाका सार यह है कि म्लेच्छोंने अभिनन्दनदेवकी मूर्तिको तोड़ दिया लेकिन वह जुड़ गई और एक बड़ा अतिशय प्रगट हुआ। सम्भवतः इसी अतिशयके कारण 'प्राकृतनिर्वाणकाण्ड' और 'अपभ्रंश निर्वाणभवित'में उसकी वन्दना की गई है। अतएव इन सब उल्लेखादिकोंसे ज्ञात होता है कि मालवाके मङ्गलपुरके अभिनन्दनदेवकी महिमा लोक-विश्रुत रही है और वह एक पवित्र अतिशयतीर्थ रहा है। यह तीर्थ भी आठ-सौ वर्षसे कम प्राचीन नहीं है।

इस तरह इस संक्षिप्त स्थानपर हमने कुछ ज्ञात अतिशय तीर्थों और सातिशय जिनबिम्बोंका कुछ परिचय देनेका प्रयत्न किया है। जिन अतिशय तीर्थों अथवा सातिशय जिनबिम्बोंका हमें परिचय मालूम नहीं हो सका उन्हें यहाँ छोड़ दिया गया है। आशा है पुरातत्त्वप्रेमी उन्हें खोजकर उनके स्थानादिका परिचय देंगे।



१. 'पासं तह अहिणंदण णायद्दि मंगलाउरे वंदे ।'—गाथा २० ।

२. 'मंगलवुरि वंदउं जगपयासु, अहिणंदणु ज्जिणु गुणगणणिवासु ।'